



साध्वी श्रीनिर्मलाश्री  
रिसर्च स्कॉलर, प्राकृत जैन विद्यापीठ, मुजफ्फरपुर

## जैनमतानुसार अभाव-प्रमेयमीमांसा

प्रत्येक पदार्थ अपने लक्षण से ही ज्ञात होता है. घट की सजातीय और विजातीय पदार्थों से व्यावृत्ति करके ज्ञाता उसका ज्ञान करता है. यदि घट का ज्ञान करते समय सजातीय और विजातीय पदार्थों की व्यावृत्ति न की जाय, तो घट के निश्चित रूप का ज्ञान नहीं हो सकता है. अतः सभी पदार्थ सदसदात्मक हैं. उनमें सद् अंश को भाव या विधि कहा जाता है (विधि: सदंश इति) और असद् अंश को प्रतिषेध अर्थात् अभाव कहा जाता है. जैसे प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार<sup>१</sup> में वादि-देवसूरि ने कहा है—‘प्रतिषेधोऽसदंश इति’. यदि पदार्थ को सदसदात्मक न माना जाय किन्तु केवल सद् रूप ही माना जाय तो किसी भी वस्तु के स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकेगा, क्योंकि प्रत्येक वस्तु अभावरूप और व्यावृत्तिरूप होने पर ही स्वरूप-युक्त कही जाती है. इसी तरह वस्तु को सर्वथा अभाव रूप माना जाय तो वस्तु का स्वरूप ही सिद्ध नहीं होगा. अतएव प्रत्येक पदार्थ स्वरूप से सत् और पर रूप से असत् होने के कारण भाव और अभाव रूप है. आचार्य श्रीहेमचन्द्र ने भी अपनी प्रमाणमीमांसा<sup>२</sup> में इसी बात का समर्थन किया है :

सर्वमस्ति स्वरूपेण, पर-रूपेण नास्ति च ।

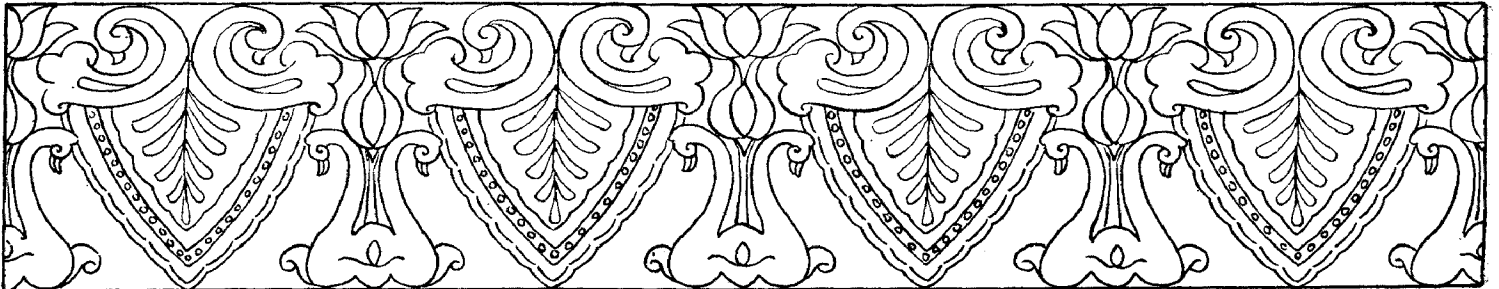
अन्यथा सर्वसत्त्वं स्यात् स्वरूपस्याप्यसंभवः ।

प्रत्येक वस्तु स्व-स्वरूप से विद्यमान है और पर-स्वरूप से अविद्यमान है. यदि वस्तु को पररूप से भी भावरूप स्वीकार किया जाय तो एक वस्तु के सद्भाव में संपूर्ण वस्तुओं का सद्भाव मानना चाहिए, और यदि वस्तु को स्वरूप से भी अभावरूप माना जाय तो वस्तु को सर्वथा स्वभाव-रहित मानना चाहिए, जो कि वस्तुस्थिति से विपरीत है. अर्थात् यदि वस्तु को अभावात्मक यानी सर्वथा शून्य ही माना जाय तो वाक्य का भी अभाव होने से—अभावात्मक तत्त्व—की स्वयं प्रतीति कैसे होगी ? तथा दूसरे को कैसे समझाया जायगा ? स्वप्रतिपत्ति का साधन है बोध, तथा पर-प्रतिपत्ति का उपाय है वाक्य. इन दोनों के अभाव में स्वपक्ष का साधन और पर-पक्ष का दूषण कैसे हो सकेगा ? इस तरह विचार करने से लोक का प्रत्येक पदार्थ भावाभावात्मक प्रतीत होता है.

जो वादी वस्तु को पर-रूप से असत् नहीं मानते हैं, उन्हें घट को सर्वात्मक मानना चाहिए, क्योंकि घट जिस तरह स्वरूप से सत् है, यदि उसी तरह पररूप से भी सत् हो तो घट किसी भी रूप से असत् न होने के कारण उस (घट) को सर्वात्मक मानना चाहिए, किन्तु वस्तुस्थिति वैसी नहीं है. अतः पररूप से असत् मानने से ही पदार्थ के निश्चित स्वरूप का ज्ञान हो सकता है. स्व-सत्त्व को ही पर-असत्त्व नहीं कहा जा सकता, क्योंकि विधि और प्रतिषेध दो विरोधी धर्म हैं; यदि कहा जाय कि जैनसिद्धान्तानुसार भी एक ही जगह विधि और प्रतिषेध माना जाता है तो यह कथन भी उचित नहीं है; क्योंकि जैन वस्तु के जिस अंश को सत् मानते हैं उसी अंश को असत् नहीं मानते हैं, तथा उसके जिस अंश को असत् मानते हैं, उसी अंश को सत् नहीं मानते हैं. जैन सिद्धान्तानुसार वस्तु न सत् है, न असत्; पर सदसदात्मक

१. तृतीय परिच्छेद. सूत्र ५७.

२. पृ० १२.



जात्यन्तर है. वह स्वद्रव्य, क्षेत्र काल और भाव रूप से सत् है और पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप से असत् है. अतः विरोध के लिये कोई स्थान नहीं है.

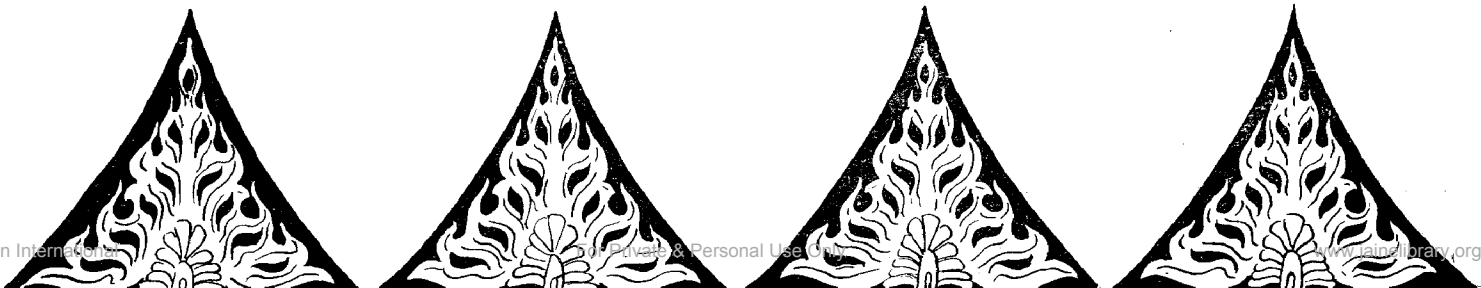
वस्तुस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये भाव पदार्थ से अत्यन्त भिन्न अन्योन्याभाव नामक स्वतंत्र पदार्थ मानने से ही काम चल सकता है, अतः वस्तु को भावाभावात्मक मानने की आवश्यकता नहीं है—यह शंका भी उचित नहीं, क्योंकि यदि वस्तु को पर-रूप से अभावात्मक नहीं माना जाय, तो पट आदि के अभाव को घट नहीं कह सकने के कारण घट को पटरूप मानना पड़ेगा. जैसे घटाभाव से भिन्न होने के कारण घट को घट कह सकते हैं, वैसे ही पट को भी घटाभाव से भिन्न होने के कारण घट मानना चाहिए.

तात्पर्य यह है कि न्याय-वैशेषिक के अनुसार अन्योन्याभाव को दो पदार्थों की स्वतंत्र स्थिति में कारण माना जाता है, और यह भेद स्वयं एक स्वतंत्र पदार्थ है. उसके अनुसार जहां घट का अभाव नहीं रहता वहां घट का निश्चय होता है. पर यह मान्यता ठीक नहीं है. न्याय-वैशेषिक के अनुसार पट आदि घट के अभावरूप नहीं हैं, इसलिए पट आदि के घट के अभाव से भिन्न होने पर पटादि में भी घट का ज्ञान होना चाहिए. जैन-सिद्धान्तानुसार घट को घट के अतिरिक्त सभी पदार्थों का अभावरूप-स्वीकार गया है. अतः घट-पटादि के भी अभाव स्वरूप होने से घट में पट का ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए स्व-पररूप से सदसदात्मक सब पदार्थों को स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा प्रतिनियत रूप व्यवस्था की अनुपपत्ति होगी. न्यायकुमुदचन्द्र<sup>१</sup> में आचार्य प्रभाचन्द्र ने कहा है—‘स्वपररूपाभ्यां सदसदात्मकाः सर्वे भावाः प्रतिपत्तव्या प्रतिनियतरूपव्यवस्थान्यथानुपपत्तेः’ यदि कहा जाय कि प्रतिनियतरूप व्यवस्था की अनुपपत्ति नहीं होगी, क्योंकि पूर्व-कथित इतरेतराभाव से उसकी व्यवस्था हो जायगी. तो यहां प्रश्न उठता है कि यह इतरेतराभाव स्वतन्त्र है कि भाव का धर्म है ? इतरेतराभाव स्वतंत्र नहीं हो सकता, क्योंकि अपने स्वातंत्र्य के लिये वह दूसरे इतरेतराभाव की अपेक्षा रखेगा और दूसरा तीसरे की, तीसरा चौथे की इत्यादि, और इस प्रकार अनवस्था होने के कारण इतरेतराभाव का स्वतंत्र अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो सकेगा. तब क्या वह भाव का धर्म है ? इतरेतराभावको भावपदार्थ का धर्म स्वीकार करने पर प्रश्न होगा—किस भाव का धर्म है ? घट का, भूतल का या उभय का ?—यदि इतरेतराभाव को घट रूप भावपदार्थ का धर्म माना जाय तो भी प्रश्न उठता है कि वह घटस्वरूप का निषेधक है या नहीं ? यदि उसे निषेधक माना जाय तो फिर प्रश्न होगा कि घट में ही घटस्वरूप का वह निषेधक है या भूतल में घटस्वरूप का ?

इतरेतराभाव को घट में घटस्वरूप का निषेधक मानना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर घट की सत्ता ही असिद्ध हो जायगी और उस परिस्थिति में वह इतरेतराभाव किस भाव पदार्थ का धर्म होगा ? और “भूतले घटो नास्ति” यह प्रतीति भी कैसे होगी ? क्योंकि घट में ही उस प्रतीति का प्रसंग होगा. यदि आप इतरेतराभाव को भूतल में घटस्वरूप का निषेधक मानेंगे तो यह जैन मत स्वीकार करना होगा, कारण जैन-दर्शन के अनुसार घटाभाव घटधर्म होता हुआ ही भूतल में घटस्वरूप का निषेधक होता है.

यदि इतरेतराभाव को घटस्वरूप का अनिषेधक माना जाय तो भूतल में भी घटस्वरूप का प्रसंग होने से अभाव-कल्पना व्यर्थ हो जायगी. भूतल का धर्म भी उसे नहीं मान सकते क्योंकि ‘घटोऽस्ति’ इत्याकारक अस्तित्वा-प्रतीति के विषय-भूत ‘अस्तित्वा’ की तरह समान ‘घटो नास्ति’ इत्याकारक ‘नास्तित्वा’-प्रतीति का विषयभूत नास्तित्वा-धर्म भी घट का ही धर्म है. यदि नास्तित्व आधार (भूतलका) धर्म होकर भी आधेय (घटादि) के साथ समानाधिकरण हो सकता है तब तो, अस्तित्व को भी आधार का धर्म मान लेने में कोई विरोध नहीं होना चाहिए. और फलस्वरूप अस्तित्व तथा नास्तित्व इन दोनों धर्मों से शून्य होने के कारण घटपटादि द्रव्य खपुष्पवत् असत् हो जायेंगे. इसी प्रकार ‘नास्तित्व’ आधार तथा आधेय—इन दोनों का धर्म भी नहीं हो सकता है क्योंकि तब तो उपरोक्त युक्ति द्वारा अस्तित्व को भी उभय धर्म मानना पड़ेगा.

१. प्रथम भाग, पृ० ३६७.



इस अभाव प्रमेय को लेकर दार्शनिकों में काफी विचारविमर्श हुआ है। प्रभाकर मीमांसक अभाव के संपूर्ण द्वेषी हैं, वे अभाव को नहीं मानते। बौद्ध दार्शनिक भी अभाव को कल्पित पदार्थ मानते हैं। न्याय-वैशेषिक तथा वेदान्ती अभाव को भाव से भिन्न एक स्वतन्त्र पदार्थ स्वीकार करते हैं। सांख्य इसे अधिकरण स्वरूप मानते हैं। जैनमतानुसार अभाव वस्तु का अभावांश है।

इस अभाव प्रमेय के भेद को लेकर भी दार्शनिकों में मतभेद विद्यमान है। वैशेषिक संप्रदाय में प्रागभावादि भेद से अभाव को चार प्रकार का माना गया है। नव्य नैयायिक गंगेश प्रभृति आचार्यों ने अभाव के चार प्रकार ही माने हैं। प्राचीन नैयायिक उदयनाचार्य ने भी स्वरचित लक्षणवली में अभाव के चतुर्विध का ही प्रतिपादन किया है। वाचस्पति मिश्र ने भी इसी बात का सयर्थन किया है। किन्तु जयन्त भट्ट के मतानुसार अभाव द्विविध है—प्रागभाव और ध्वंस। वे अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव को स्वतन्त्र अभाव नहीं मानते किन्तु प्रागभाव को ही उक्त दोनों अभावों के स्थान में मानते हैं। जैन-सिद्धान्तानुसार भी अभाव चार प्रकार का है, जैसे—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव। पदार्थ का पूर्व में अनस्तित्व ही प्रागभाव है, अर्थात् जिसका विनाश होने पर कार्य की उत्पत्ति हो वह पदार्थ उस कार्य-का प्रागभाव है, जैसे घट मृत्पिण्डविनाश के द्वारा उत्पन्न होता है अतः मृत्पिण्ड घट का प्रागभाव है। जैसाकि वादि-देव-सूरि ने अपने प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार<sup>१</sup> में कहा है—‘यन्निवृत्तावेव कार्यस्य समुत्पत्तिः सोऽस्य प्रागभावः’ कोई भी कार्य अपनी उत्पत्ति के पहले असत् होता है, वह कारणों से उत्पन्न होता है। कार्य का अपनी उत्पत्ति के पहले न होना ही प्रागभाव कहलाता है। यह अभाव भावान्तर रूप होता है। यह तो ध्रुव सत्य है कि किसी भी द्रव्य की उत्पत्ति नहीं होती। द्रव्य तो अनादि-अनन्त है। उत्पत्ति होती है पर्याय की। द्रव्य अपने द्रव्यरूप से कारण होता है, और पर्यायरूप से कार्य। जो प्रायः उत्पन्न होने जा रहा है वह उत्पत्ति के पूर्व पर्याय रूप में नहीं था। अतः उसका जो अभाव वही प्रागभाव है। यह प्रागभाव पूर्वपर्यायरूप होता है, अर्थात् घट-पर्याय जब तक उत्पन्न नहीं हुआ तब तक वह असत् है और जिस मिट्टी द्रव्य से वह उत्पन्न होने वाला है उस द्रव्य का घट से पहले का पर्याय घट का प्रागभाव कहा जाता है। अर्थात् वही पर्याय नष्ट होकर घटपर्याय बनता है। अतः वह पर्याय घट-प्रागभाव है।

इसी तरह अत्यन्त सूक्ष्म काल की दृष्टि से पूर्वपर्याय ही उत्तरपर्याय का प्रागभाव है और सन्तति की दृष्टि से यह प्रागभाव अनादि भी कहा जाता है। पूर्वपर्याय का प्रागभाव तत्पूर्वपर्याय है, तथा तत्पूर्वपर्याय का प्रागभाव उससे भी पूर्व का पर्याय होगा, इस तरह सन्तति की दृष्टि से यह अनादि होता है। यदि कार्य-पर्याय का प्रागभाव नहीं माना जाता है, तो कार्यपर्याय अनादि हो जायगा और द्रव्य में त्रिकालवर्ती सभी पर्यायों का एक काल में प्रकट सद्भाव मानना होगा, जो कि सर्वथा प्रतीति-विरुद्ध है।

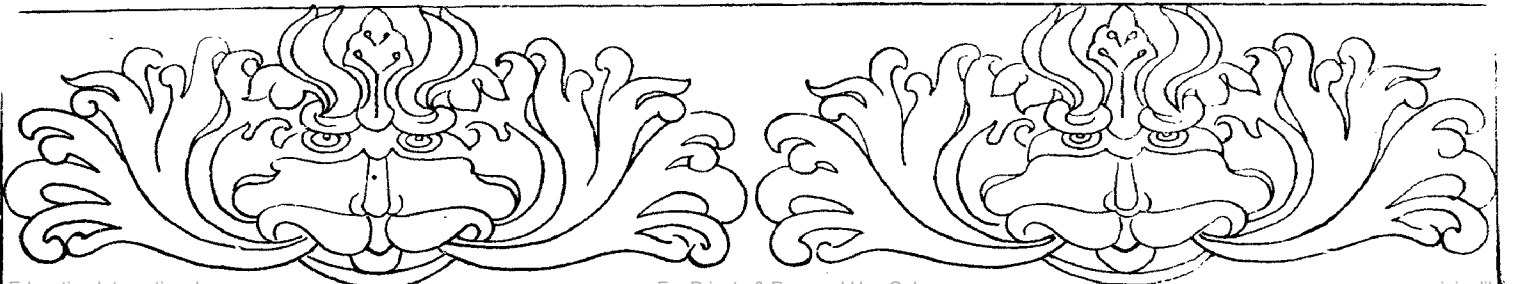
जिसकी उत्पत्ति से कार्य का अवश्य विनाश हो, वह उस कार्यका प्रध्वंसाभाव है। जैसे कपाल-समुदाय की उत्पत्ति होने से नियमतः घटका विनाश होता है, अतः कपालसमुदाय ही घट का प्रध्वंसाभाव है। जैसा कि वादि देवसूरिने कहा है—‘यदुत्पत्तौ कार्यस्यावश्यं विपत्तिः सोऽस्य प्रध्वंसाभावः’<sup>२</sup> द्रव्य का विनाश नहीं होता किन्तु विनाश होता है पर्याय का। अतः कारण-पर्याय का नाश कार्यपर्यायरूप होता है। कारण नष्ट होकर कार्यरूप बन जाता है। कोई भी विनाश सर्वथा अभावरूप या तुच्छ न होकर उत्तर पर्यायरूप होता है। घट पर्याय नष्ट होकर कपाल-पर्याय बनता है, अतः घट का विनाश कपालरूप ही फलित होता है।

तात्पर्य यह है कि पूर्वपर्याय का नाश उत्तरपर्यायरूप होता है। यदि प्रागभाव को न माना जाय तो कार्यभूत द्रव्य घट-पटादि अनादि हो जायगा, और अनादि पदार्थ का नाश नहीं होता है। अतः घट पटादि की नित्यत्वापत्ति होगी। प्रध्वंसाभाव को न स्वीकार करने पर कार्यभूत घट-पटादि अनन्त हो जायेंगे। जैसा कि स्वामी समन्तभद्र ने आप्तमीमांसा<sup>३</sup> में

१. तृतीय परिच्छेद, सूत्र ५६.

२. प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार, तृतीय परिच्छेद, सूत्र ६१.

३. कारिका १०.



कहा है :

कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निह्वे, प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ।

और घट-पटादि अनन्त हो जाने पर सभी पर्यायों का सद्भाव युगपत् अनुभव में आना चाहिए किन्तु वर्तमान में तो एक ही पर्याय अनुभव में आता है।

यहां यह शंका भी नहीं करनी चाहिए कि घटविनाश यदि कपालरूप है तो कपाल का विनाश होने पर, यानी घटविनाश का नाश होने पर, फिर घट को पुनरुज्जीवित हो जाना चाहिए, क्योंकि विनाश का विनाश तो सद्भावरूप होता है। कारण का उपमर्दन करके कार्य उत्पन्न होता है, पर कार्य का उपमर्दन करके कारण नहीं उपादान का उपमर्दन करके उपादेय की उत्पत्ति ही सर्वजनसिद्ध है।

प्रागभाव (पूर्वपर्याय) और प्रध्वंसाभाव (उत्तरपर्याय) में उपादान-उपादेय भाव है। प्रागभाव का नाश करके प्रध्वंस उत्पन्न होता है, पर प्रध्वंस का नाश करके प्रागभाव पुनरुज्जीवित नहीं हो सकता, जो नष्ट हुआ वह नष्ट हुआ, नाश अनन्त है, जो पर्याय गया वह अनन्त काल के लिये गया, वह फिर वापिस नहीं आ सकता, 'यदतीतमतीतमेव तत्'—यह ध्रुव नियम है, अतः यदि प्रध्वंसाभाव नहीं माना जाता है तो कोई भी पर्याय नष्ट नहीं होगा और सभी पर्याय अनन्त हो जायेंगे, प्रध्वंसाभाव प्रतिनियत पदार्थव्यवस्था के लिये नितान्त आवश्यक है।

अन्य स्वभाव से अपने स्वभाव की व्यावृत्ति को इतरेतराभाव या अन्यापोह कहते हैं, जैसे स्तम्भ-स्वभाव से कुम्भ-स्वभाव की व्यावृत्ति होती है, आचार्य वादि-देवसूरि ने भी इसी बात को इस प्रकार कहा है—'स्वरूपान्तरात् स्वरूपव्यावृत्तिरितरेतराभाव इति।' एक पर्याय का दूसरे पर्याय में जो अभाव है वह इतरेतराभाव है, स्वभावान्तर से स्वस्वभाव की व्यावृत्तिको इतरेतराभाव कहते हैं, प्रत्येक पदार्थ का अपना-अपना स्वभाव निश्चित है, एक का स्वभाव दूसरे का स्वरूप नहीं होता, यह जो स्वभावों की प्रतिनियतता है वही इतरेतराभाव है, घटका पट में और पट का घट में वर्तमानकालिक अभाव है, कालान्तर में घट के परमाणु मिट्टी, कपास और तन्तु बनकर पट-पर्याय को धारण कर सकते हैं, पर वर्तमान में तो घट-पट नहीं हो सकता, यह जो वर्तमानकालीन परस्पर व्यावृत्ति है वह अन्योन्याभाव है।

प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव से अन्योन्याभाव का कार्य नहीं चलाया जा सकता, क्योंकि जिसके अभाव में नियम से कार्य की उत्पत्ति हो वह प्रागभाव, और जिसके होने पर नियम के कार्य का विनाश हो वह प्रध्वंसाभाव कहलाता है, पर इतरेतराभाव के अभाव या भाव से कार्योत्पत्ति या विनाश का कोई सम्बन्ध नहीं है, वह तो वर्तमान पर्यायों के प्रतिनियत स्वरूप की व्यवस्था करता है, यदि यह इतरेतराभाव नहीं माना जाय, तो कोई भी प्रतिनियत पर्याय सर्वात्मक हो जायगा, अर्थात् सब सर्वात्मक हो जायेंगे, जैसाकि स्वामी समंतभद्र ने आप्तमीमांसा<sup>१</sup> में कहा है—'सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोह-व्यतिक्रमे.'

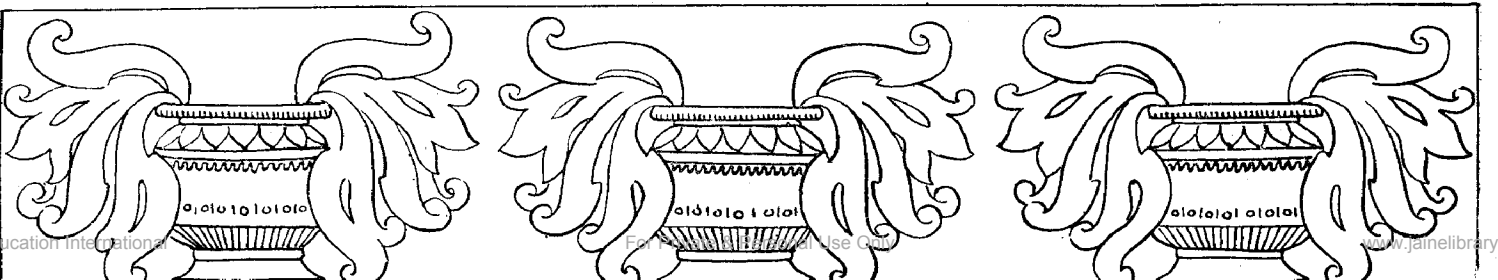
अतीतादि तीनों कालों में तादात्म्य परिणाम की निवृत्ति को अत्यन्ताभाव कहा जाता है, जैसे चेतन में अचेतन के तादात्म्य भाव का अत्यन्त अभाव है, अर्थात् चेतन किसी काल में अचेतन नहीं बनता, इसी बात को वादिदेवसूरि ने प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार<sup>२</sup> में इस प्रकार कहा है—'कालत्रयापेक्षिणी हि तादात्म्यपरिणामनिवृत्तिरत्यन्ताभावः', यदि अत्यन्ताभाव को स्वीकार न किया जाय तो घट-पटादि में भी चेतनत्व की प्राप्ति हो जायगी, जैसाकि स्वामी समंतभद्र ने कहा है—'अन्यत्र समवायेन व्यपदिश्येत सर्वथा.'<sup>३</sup> अतः एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का त्रैकालिक अभाव ही अत्यन्ताभाव है, ज्ञान का आत्मा

१. प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार, परिच्छेद, ३, सूत्र ६३.

२. कारिका ११ (पूर्वार्ध).

३. तृतीय परिच्छेद, कारिका ६५.

४. कारिका ११ (उत्तरार्ध).



में समवाय है, उसका समवाय कभी भी पुद्गल में नहीं हो सकता, अतः यह अत्यन्ताभाव कहलाता है. यदि अत्यन्ताभाव का लोप कर दिया जाय तो किसी भी द्रव्य का कोई असाधारण स्वरूप नहीं रह जायगा. सब द्रव्य सर्वात्मक हो जायेंगे.

अत्यन्ताभाव के कारण ही एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं हो पाता. द्रव्य चाहे सजातीय हो या विजातीय, उसका अपना प्रतिनियत अखण्ड स्वरूप होता है. एक द्रव्य दूसरे में कभी भी ऐसा विलीन नहीं होता जिससे कि उसकी सत्ता ही समाप्त हो जाय.

इस लेख में हमने अभाव प्रमेय को लेकर विचार किया. उसके ग्राहक-प्रमाण के सम्बन्ध में विस्तृत विचार यहाँ इष्ट नहीं है. अभावरूप प्रमेय के ग्राहक-प्रमाण के बारे में अनेक प्रकार के मत दार्शनिकों में पाये जाते हैं. मीमांसक कुमारिल के अनुसार अभाव प्रमेय अनुपलब्धिप्रमाण-ग्राह्य है. बौद्ध, अपने कल्पित अभावका ग्यारह प्रकार की अनुपलब्धियों द्वारा अनुमेय मानते हैं. वेदान्तियों के मत में घटाभाव पटाभाव आदि अभावों के साथ इन्द्रियों का कोई सम्बन्ध संभव नहीं होने से प्रत्यक्ष के द्वारा अभाव का ग्रहण नहीं हो सकता है, अतः कुमारिल का अनुसरण करते हुए वे अभाव के ग्रहण के लिये अभाव या अनुपलब्धि नामक एक पृथक् मानते हैं. किन्तु नैयायिक अभाव ग्रहण का प्रत्यक्षप्रमाण द्वारा ही मानते हैं. और सांख्य ने भी उसको प्रत्यक्ष के अन्तर्गत ही माना है. परन्तु उसके उपपादन का मार्ग भिन्न है. जैन मतानुसार अभाव को प्रत्यक्षप्रमाण द्वारा ग्राह्य माना गया है. जैसा कि वादी देवसूरि ने स्याद्वाद-रत्नाकर में कहा है — 'अभाव-प्रमाणं तु प्रत्यक्षादावेवान्तर्भवतीति'. स्थानाभाव के कारण इन मान्यताओं पर ऊहापोह करना प्रस्तुत प्रसंग में सम्भव नहीं है.

